

खजुराहो की विशिष्ट विष्णु प्रतिमाएँ— एक नवीन चिन्तन

ज्ञानेन्द्र नारायण राय

<https://doi.org/10.61410/had.v21i3.356>

सारांश

‘हिन्दू’ जनमानस में वैष्णव सम्प्रदाय का अपना विशिष्ट स्थान है जो आज भी किसी न किसी रूप में भारत के प्रत्येक भाग में प्रचलित है। विष्णु सबसे पहले एक साधारण देवता के रूप में वैदिक काल से ही दिखाई देते हैं। यज्ञ के साथ विष्णु की तद्रूपता के कारण उत्तर वैदिक काल में विष्णु का महत्त्व धीरे-धीरे बढ़ गया। ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु की कल्पना और विष्णुयागों का और विस्तार हुआ। पुराणों में विष्णु सम्बन्धी, कल्पनाओं, कथाओं और पूजा पद्धति का अपरिमित विस्तार हुआ है। पौराणिक सन्दर्भों में विष्णु के विभिन्न अवतारों की चर्चा मिलने लगती है लेकिन सबमें अवतारों की संख्या को लेकर भिन्न सूची प्राप्त होती है। गुप्तकाल तक आते-आते विष्णु-मूर्तियों के अनेक रूपों का विकास देखने को मिलता है। मध्ययुग में परिकर के विकास के साथ-साथ अलंकरण तथा यांत्रिकता दिखाई पड़ने लगती है जिससे मध्यकालीन प्रतिमा-विज्ञान अधिक जटिल हो गया परिणाम स्वरूप विष्णु मूर्तियों के भी नए रूप विकसित हुए। इस काल खण्ड में स्वतन्त्र मूर्तियों को स्थान मन्दिरों के जगती, जंघा तथा वितान आदि भागों पर किया जाने लगा। अब कई नए केन्द्रों में विष्णु-मूर्तियों का व्यापक रूप से निर्माण प्रारम्भ हुआ। खजुराहो वैष्णव मूर्ति-शिल्प की दृष्टि से उत्तर भारत का सर्वाधिक महत्त्व का केन्द्र है जहाँ आज भी अनेक वैष्णव मन्दिर हैं। इन मन्दिरों के स्थापत्य शिल्प के साथ-साथ मूर्ति शिल्प के भी अत्यन्त मनोहारी दृश्य उपस्थित हैं जिनमें से कुछ तो अत्यन्त विलक्षण होने के साथ-साथ विशिष्ट भी हैं। इनमें से कुछ प्रतिमा शास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित प्रतिमा निर्देशों का पालन करती है तो कुछ पौराणिक प्रसंगों का हृबहू निरूपण लगती हैं कुछ ऐसी भी विष्णु की मूर्तियाँ खजुराहो के शिल्पियों द्वारा रची गई हैं जिनका कहीं किसी शास्त्रीय निर्देश से मेल नहीं बैठता लेकिन मूर्ति-शिल्प और प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से बेजोड़ कृति है। जो खजुराहो मूर्ति शिल्प की निज विशेषता एवं वैशिष्ट्य है। प्रस्तुत शोध आलेख में ऐसी ही कुछ विलक्षण एवं विशिष्ट प्रतिमाओं का चयन कर उनका प्रतिमाशास्त्रीय तथा मूर्ति-शिल्प की दृष्टि से नवीन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द : तद्रूपता, प्रतिमाशास्त्रीय, यांत्रिकता, विष्णुसहस्रनाम, नवोन्मेषणपूर्ण, व्यंजनामयी त्रिआयात्मक, कट्यावलम्बित, शिरश्चक्र, सन्निविष्ट, पद्महस्ता।

‘हिन्दू’जनमानस में वैष्णव सम्प्रदाय का अपना विशिष्ट स्थान है जो आज भी किसी न किसी रूप में भारत के प्रत्येक भाग में प्रचलित है। विष्णु सबसे पहले एक साधारण देवता के रूप में वैदिक काल से ही दिखाई देते हैं। ऋग्वेद में विष्णु कई स्थानों पर आदित्य के रूप में प्रतिष्ठा पाते हैं। विष्णु आदित्य वर्ग के वैदिक देवताओं में एक देवता हैं। विष्णु की स्तुति में ऋग्वेद का मात्र एक ही सूक्त प्राप्त है, किन्तु यह इतना सारगर्भित है कि उन्हीं तत्वों से विष्णु को हिन्दू त्रिदेवों में आगे चलकर प्रमुख स्थान मिला। ऋग्वेद में वर्णन आता है कि आदित्य अपने तीन पगों से तीनों लोकों की परिक्रमा करते

- सेण्टेनरी फेलो, भारत अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

हैं जिनमें से दो पग हमें दिखाई पड़ते हैं, लेकिन तीसरा पग मर्त्य चक्षु से परे है, दूसरे मन्त्र में वर्णित है कि वे अपना तीसरा नाम प्रकाशमय द्युलोक में धारण करते हैं।

विष्णु के तीन पद सूर्य-पथ के बोधक हैं इस बात पर प्रायः सभी विद्वान् सहमत हैं। इसकी प्रतिकात्मकता को लेकर विद्वानों ने एकाधिक व्याख्याएँ दी हैं पहला मत के यास्क के पूर्ववर्ती औरण्वाम का आते हैं जिसके अनुसार— विष्णु के तीन पद सूर्य के उदय, मध्याह्न और अस्त का बोधक है। दूसरे मत के अनुसार इन तीन पदों से सौर देवता के तीन लोकों में होकर जाने का मार्ग अभिप्रेत है। यह मत ऋग्वेदीय उद्धरणों से समर्थित है तथा उत्तरवैदिक कालीन परम्परा उसकी पुष्टि भी करती है।

मेक्डॉनल ने पहले मत पर आपत्ति की है कि विष्णु के तीसरे पद का सूर्यास्त के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं बैठता।

विष्णु के ये तीन पग वेदोत्तरकालीन साहित्य में विष्णु के वामनावतार के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। विष्णु की विशेषता गति है— यह तथ्य तीन पदों के अलावा अन्य उक्तियों से भी स्पष्ट है। 'उरु-गाय' 'उरु-क्रम' विशेषणों एवं 'विक्रम' पद का प्रयोग प्रायः विष्णु के लिए ही हुआ है।

यज्ञ के साथ विष्णु की तद्रूपता के कारण उत्तरवैदिक काल में विष्णु का महत्त्व धीरे-धीरे बढ़ गया। ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु की कल्पना और विष्णुयागों का और विस्तार हुआ। इस सन्दर्भ में **शतपथ ब्राह्मण** में एक कथा वर्णित है कि यज्ञ-विष्णु सर्वप्रथम यज्ञफल को समझकर उसके माध्यम से देवताओं के सिरमौर बन गए। फिर भी इस काल में विष्णु किसी सम्प्रदाय के केन्द्र बिन्दु नहीं बने, सम्भवतः शायद यही कारण रहा होगा कि उस काल में विष्णु की मूर्ति निर्माण की आवश्यकता नहीं पड़ी। पौराणिक आख्यानों में विष्णु पालक के रूप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण देवता कहे गए हैं। पुराणों में विष्णु सम्बन्धी, कल्पनाओं, कथाओं और पूजा पद्धति का अपरिमित विस्तार हुआ है। वैदिक काल में सूर्य ब्राह्मण ग्रन्थों में नारायण और ऐतिहासिक देवता के रूप में वासुदेव कृष्ण के रूप में प्रतिष्ठित रहे। भक्ति सम्प्रदाय के विकसित होने पर इसे ही वैष्णव सम्प्रदाय कहा गया जिसके नायक के रूप में वासुदेव कृष्ण थे। जितेन्द्र नाथ बनर्जी के अनुसार इस सम्प्रदाय का पूर्ववर्ती नाम एकान्तिक, भागवत, पांचरात्र, सातत्व आदि थे। वासुदेव-कृष्ण को उनके बड़े भाई सङ्कर्षण (बलराम) उनके पुत्रगण प्रद्युम्न, साम्ब तथा प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध के साथ उनके भक्तों तथा प्रशंसकों द्वारा देवत्व प्रदान किया गया। पहले उन्हें वीर-देवों के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और वे वृष्णि-कुल के पंचवीर कहे गए, किन्तु कालान्तर में इस सूची से साम्ब को अलग कर दिया गया। शेष चार वासुदेव के स्वरूप मान लिए गये। और बाद में प्रधान इष्टदेव वासुदेव से सम्बन्धित विभववाद (अवतारवाद) को संयुक्त कर दिया गया। इन्हीं वासुदेव की तद्रूपता ई.पू. में किसी समय विष्णु और नारायण से स्थापित हुई।

इस प्रकार वासुदेव-विष्णु नारायण का ध्यान पाँच रूपों में किया जा सका 'पर', 'सर्वोच्च', 'व्यूह' (उद्भूत), 'विभव' (अवतीर्ण), 'अन्तर्यामिन्' (सभी प्राणियों के हृदय में स्थित) और 'अर्चा' (भगवान् की वे मूर्तियाँ जिन्हें विग्रह कहा गया)। 'अर्चा' से प्रतिमा-विज्ञान का सीधा सम्बन्ध है इसी के माध्यम से पूर्व के तीन रूपों का चित्रण होता है। चौथा अथवा अन्तर्यामिन् रूप प्रतिमा-विज्ञान के क्षेत्र से बाहर है क्योंकि इस रूप में भगवान् सभी जीवों के हृदय में स्थित हैं।

महर्षि पतंजलि के एक सूत्र *जनार्दनस्वात्मा चतुर्थएव* के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि चतुर्व्यूह-सिद्धान्त सर्व प्रथम दूसरी शती ई.पू. में व्यवस्थित हुआ। महर्षि पतंजलि के इस कथन की पुष्टि पहली दूसरी शती ई.पू. निर्मित वेसनगर के तीन व्यूह-ध्वजों (वासुदेव, सङ्कर्षण तथा प्रद्युम्न के क्रमशः गरुडध्वज, तालध्वज तथा मकरध्वज) से होती है। *पांचरात्र* धर्माचार्यों द्वारा गुप्तकाल या उसके बाद में इन चार व्यूहों की संख्या बढ़ाकर चौबीस कर दी गई।

महाभारत में सर्वप्रथम अवतारवाद की अवधारणा दिखाई देती है तथा विभिन्न नामों की सूची भी प्राप्त होती है।

कालान्तर में हम देखते हैं या यह कहें कि पौराणिक सन्दर्भों में विष्णु के विभिन्न अवतारों की चर्चा मिलने लगती है लेकिन सबमें अवतारों की संख्या को लेकर भिन्न सूची प्राप्त होती है। **हरिवंशपुराण** में **महाभारत** की पहली सूची के छः अवतारों का उल्लेख मिलता है। **वायुपुराण** में इनकी संख्या 12 बारह बताई गई है वहीं **भागवतपुराण** में विष्णु के अवतारों की तीन सूची अलग-अलग स्थानों पर मिलती है। **वराहपुराण** में दस अवतारों की सर्व मान्य सूची मिलती है **अग्निपुराण** भी इसी सूची को मान्यता प्रदान करता है किन्तु **मत्स्यपुराण** में केवल सात अवतारों का उल्लेख हुआ है।

इन साहित्यिक सन्दर्भों के साथ ही ई.पू. के अनेक अभिलेखों में भागवत देवगृहों का उल्लेख मिलता है जिसमें घोसुण्डी तथा बेसनगर मिलसा उल्लेखनीय हैं।

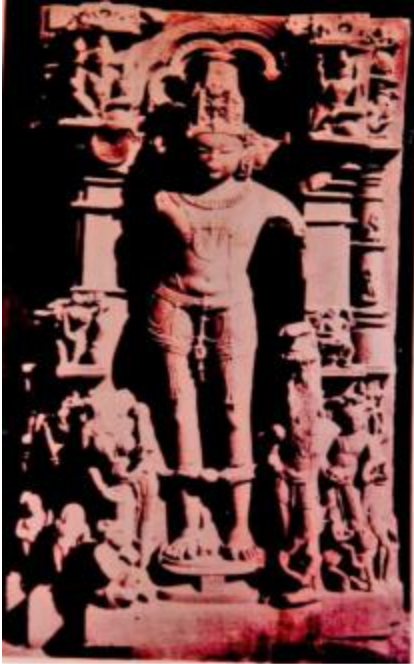
मोरा अभिलेख में विष्णु का उल्लेख तथा मथुरा से प्राप्त विष्णु प्रतिमाओं का स्वतन्त्र अंकन हमें कृष्ण काल से मिलने लगता है जिसके अनेक उदाहरण राजकीय संग्रहालय मथुरा में सुरक्षित हैं। ये भी मूर्तियाँ चतुर्मुखी हैं। गुप्तकाल तक आते-आते विष्णु-मूर्तियों के अनेक रूपों का विकास देखने को मिलता है। मूर्ति-शिल्प की दृष्टि से ये मूर्तियाँ सुन्दर बनी हैं। मध्ययुग तक आते-आते इन मूर्तियों में परिकर के विकास के साथ-साथ अलंकरण तथा यान्त्रिकता दिखाई पड़ने लगती है जिससे मध्यकालीन प्रतिमा-विज्ञान अधिक जटिल हो गया और परिणाम स्वरूप विष्णु मूर्तियों के भी नए रूप विकसित हुए। इस काल खण्ड में स्वतन्त्र मूर्तियों को स्थान मन्दिरों के जगती, जंघा तथा वितान आदि भागों पर किया जाने लगा। इस काल में कई नए केन्द्रों में विष्णु-मूर्तियों का व्यापक रूप से निर्माण प्रारम्भ हुआ जिनमें खजुराहो का विशिष्ट स्थान है।

खजुराहो वैष्णव मूर्ति-शिल्प की दृष्टि से उत्तर भारत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण का केन्द्र है जहाँ आज भी अनेक वैष्णव मन्दिर हैं जिसमें से कुछ तो नागर शैली के प्रतिनिधि उदाहरण के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हैं। चन्देल नरेशों ने शैव और वैष्णव दोनों सम्प्रदायों का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। इन मन्दिरों के स्थापत्य शिल्प के साथ-साथ मूर्ति शिल्प के भी अत्यन्त मनोहारी दृश्य उपस्थित हैं जिनमें से कुछ तो अत्यन्त विलक्षण भी हैं। इनमें से कुछ प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित प्रतिमा, सम्बन्धी निर्देशों का पालन करती है तो कुछ पौराणिक प्रसंगों का हूबहू निरूपण करती और विष्णु की कुछ प्रतिमाएँ ऐसी भी मूर्तियाँ खजुराहो के शिल्पियों द्वारा रची गई हैं जिनका कहीं किसी शास्त्रीय निर्देश से मेल नहीं बैठता लेकिन मूर्ति-शिल्प और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से बेजोड़ कृतियाँ हैं। जो खजुराहो मूर्ति शिल्प की निज विशेषता एवं वैशिष्ट्य है। यहाँ हमने ऐसी ही कुछ विलक्षण एवं विशिष्ट प्रतिमाओं का चयन कर उनका प्रतिमाशास्त्रीय तथा मूर्ति-शिल्प की दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत किया है।

वैकुण्ठ

प्रतिमा विवरण एवं विशिष्टता

पुरातत्त्व संग्रहालय खजुराहो की वीथिका में प्रदर्शित चन्देल कालीन चतुर्मुखी एवं चतुर्भुजी प्रतिमा (पंजीयन संख्या 79, चित्र संख्या 01) शिल्पाटन एवं लक्षणों की दृष्टि से विशिष्ट है।



ब्रह्मा और दूसरी ओर शिव की बैठी प्रतिमा के दाहिने पार्श्व में एक है और दाहिनी की तरफ एक अनुचर चित्रण में अधिकांश अवतारों का अंकन वैकुण्ठ के पैरों के निकट भू-देवी की खण्डित हो गयी है। इस खण्डित मूर्ति वैकुण्ठ के चरणों के ऊपर फैले रखे पादपीठिका पर एक भक्त युगल भी दृष्टि से उल्लेख्यमूर्ति के पिछले भाग अंकन किया गया है। शिल्पग्रन्थों में हैं। कपिल का अश्व के साथ सम्बन्ध इस मूर्ति में पीछे के कपिलमुख को अंकित किया जाना प्रतिमालक्षण की दृष्टि से महत्व रखता है। खजुराहो में वैकुण्ठ का विशेष महत्व है। लक्ष्मण मन्दिर के गर्भगृह में स्थापित मूर्ति और उससे सम्बन्धित यशोवर्मन् के अभिलेख में वैकुण्ठ के हिमालय से खजुराहो तक का विवरण दिया गया है। यह विवरण किसी मूर्ति के विभिन्न स्थानों से होते

प्रतिमाशास्त्रीय विवेचन

किंचित द्विभग खड़े वैकुण्ठ प्रतिमा के चार मुखों में तीन मुख (बीच का पुरुष, दाहिना नरसिंह और बायाँ वराह) सामने की ओर एवं चौथा अश्वमुख पीछे की ओर बनाया गया है। पुरुष मस्तक पर किरीट मुकुट और वराह तथा नरसिंह मुखों के मस्तकों पर करण्ड मुकुट अंकित है। अश्वमुख का उपरी भाग खण्डित है अतः इसका अलंकरण दृष्टिगत नहीं है। प्रतिमा की चारों भुजाएँ खण्डित हैं। प्रतिमा के कानों में कुण्डल, गले में कौस्तुभ मणि पैरों में नूपुर आदि आभूषण हैं।



इन अलंकरणों के साथ वैजयन्ती माला भी बनी है। मुकुट के ऊपर प्रभामण्डल के स्थान पर मकर तोरण बना है। जिसमें एक ओर आकृतियाँ हैं। चामरधारिणी खड़ी खड़ा है। पार्श्व दृष्टिगोचर है। आकृति बनी थी जो के मात्र दो हाथ हुए दृष्टिगत हैं। बैठा है। लाक्षणिक में अश्वमुख का कपिलमुख के सन्दर्भ प्राप्त होता है अतः अश्वमुख के रूप में

हुए खजुराहो पहुँचने का नहीं माना जा सकता वस्तुतः यह विवरण वैकुण्ठ के दर्शन एवं विचारणा के खजुराहो तक प्रसारित होने से सम्बन्ध रखती है।

वैकुण्ठ वैदिक परम्परा में इन्द्र से सम्बद्ध एक देवता रहे किन्तु परवर्ती साहित्य में इन्द्र का ही एक नाम वैकुण्ठ बताया गया है। एक कथा के अनुसार विकुण्ठा नाम की एक आसुरी थी जिसके तप प्रभाव से इन्द्र उसके पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए अतः इन्द्र का नाम वैकुण्ठ माना जाता है। किन्तु **महाभारत** में वैकुण्ठ की गणना विष्णु के सहस्रनामों में की गयी है। पुराणों में वैकुण्ठ (या वैकुण्ठ) विष्णु का ही एक नाम बताया गया है। **भागवत्पुराण** की एक कथा के अनुसार पापों को कुण्ठित करने के कारण ही विष्णु का नाम विकुण्ठ पड़ा। इसी पुराण में अन्य स्थल पर वैकुण्ठ की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि शुभ्र ऋषि की पत्नी विकुण्ठा के गर्भ से स्वयं भगवान् ने जन्म लिया था इसीलिए वे वैकुण्ठ कहलाए और उनके निवास लोक को वैकुण्ठ लोक कहा गया। **विष्णुपुराण** में भी वैकुण्ठ नाम पड़ने का यही नाम वर्णित है। एक अध्येता के कथन के अनुसार “भारतीय शिल्प में गुप्त काल से मध्य युग तक निरन्तर लोकप्रिय रहने के बाद भी विष्णु के वैकुण्ठ स्वरूप से सम्बन्धित कथा का साहित्य में उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु यह कथन आधारहीन जान पड़ता है क्योंकि गुप्त काल में अन्तिम कलेवर को प्राप्त हुए **महाभारत** तथा कई गुप्त युग में रचे गये पुराणों में वैकुण्ठ का विवरण मिलता है। वैकुण्ठ विष्णु के सहस्र नामों में एक नाम है। विष्णुसहस्रनाम गुप्तकालीन रचना मानी गयी है जिसमें गुप्त सम्राटों के नामों तथा विरुदों के सन्दर्भ बहादुर चन्द छाबड़ा एवं दीनबन्धु पाण्डेय जैसे विद्वानों ने उल्लिखित किया है। मध्यकाल में वैकुण्ठ का सबसे पहला उल्लेख खजुराहों के लक्ष्मण मन्दिर के यशोवर्मन् के विक्रम संवत् 1011 (654 ई.) के अभिलेख में मिलता है। जिसमें कहा गया है कि कपिल आदि तीन असुरों के संहार के लिए वैकुण्ठ रूप से युक्त इन असुरों का एक ही सम्मिलित शरीर था जिन्हें ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त था कि उनका संहार उन्हीं का रूप धारण करने वाला कर सकेगा। इसी कारण विष्णु ने सौम्य, वराह, सिंह और कपिल इन चार मुखों से युक्त वैकुण्ठ रूप धारण कर उन असुरों का संहार किया। यहाँ पर स्पष्ट कर देना उचित होगा कि ये मुख विष्णु के विभिन्न अवतारों के न होकर उन असुरों के हैं। जिनका संहार वैकुण्ठ ने किया था। वैकुण्ठ काश्मीरागम अथवा तन्त्रान्तर सम्प्रदाय के प्रमुख देव माने गये हैं। इस प्रकार वैकुण्ठ का इतिहास अतिप्राचीन था जिन्हें पूर्व मध्यकाल में विशेष लोकप्रियता मिलती है। **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** में विष्णु के चार व्यूहों, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, की सम्मिलित मूर्ति को वैकुण्ठ नाम दिया है। ऐसी मूर्ति को चतुर्मुख बताया गया है। इन चार मुखों में मध्य का सामने वाला मुख सौम्य, दाहिना मुख नरसिंह, बायाँ मुख वराह और पिछला मुख कपिल मुख होंगे। **जयाख्यसंहिता** के एक ध्यान में भी वैकुण्ठ के सौम्य, नरसिंह, वराह व कपिल मुख का वर्णन है जिसमें उन्हें शुक्ल वर्ण का गरुडारुढ़ एवं किरीट कौस्तुभ आदि से अलंकृत तथा “चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए चतुर्भुज वर्णित किया गया है। यशोवर्मन् के खजुराहों अभिलेख के प्रथम श्लोक में वैकुण्ठ के इन्हीं चार मुखों का संकेत मिलता है लेकिन उनकी भुजाओं का उल्लेख नहीं है। **अपराजितपृच्छा**, **रूपमण्डन** और **देवतामूर्तिप्रकरण** में वैकुण्ठ मूर्ति का एक समान विवरण मिलता है जहाँ चतुर्मुख वैकुण्ठ को अष्टभुज और गरुड पर आरुढ़ तथा उनके दक्षिण करों में गदा, खड्ग एवं चक्र और बाम् करों में शंख, खेतक, धनुष तथा पद्म धारण किये हुए कहा गया है। इन ग्रन्थों में पीछे का चौथा मुख स्त्रीमुख या श्रीमुख बताया गया है। विश्वभर शरण पाठक एवं लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी की मान्यता है कि कपिल (असुरमुख) के स्थान पर श्रीमुख या स्त्रीमुख की परम्परा किसी भ्रान्ति के कारण

अपराजितपृच्छा एवं बाद के ग्रन्थों में प्रतिपादित की गयी क्योंकि अब तक जो चतुर्भुजी वैकुण्ठ मूर्तियाँ प्राप्त हैं उनमें कपिलानन कभी असुरमुख वाला और कभी अश्वमुख दिखाया गया है। कश्मीर (प्रताप सिंह संग्रहालय, श्रीनगर) एवं राजस्थान (चित्तौड़गढ़, दुर्ग) की दो मूर्तियों में अश्वमुख क्रमशः सिंहमुख और मध्यवर्ती पुरुषमुख के स्थान पर बना है। लेकिन खजुराहो वाली इस प्रतिमा में मध्यमुख पीछे की तरफ बनाया गया है। इस प्रकार मूर्त उदाहरणों में अश्वमुख के अंकन की अलग-अलग परम्परा रही है अश्वमुख कपिल से सम्बन्धित किया जा सकता है। तप में लीन कपिल मुनि की गुहा में परीक्षित के अश्वमेघ का घोड़ा चोरी से बाँधा गया था जिसे देखकर परीक्षित ने मृत नाग को कपिल के गले में डाल दिया और नाग के डंसने से मृत्यु प्राप्त करने के शाप का भागी बना। श्रीलंका के एक गुफा में कपिल मुनि के अंकन ने पीछे की दीवाल पर एक अश्वमुख रचा हुआ मिलता है। चन्देल यशोवर्मन् के अभिलेख में इस मूर्ति का इतिहास भी वर्णित है कि किस प्रकार यह मूर्ति कैलास से खजुराहो आई। वैकुण्ठ मूर्ति कैलाश से तिब्बत के राजा भोटनाथ के पास आई उससे कीर (चम्बा) के राजा साहि ने प्राप्त किया, साहि से हेरम्बपाल ने शक्ति से छीना और हेरम्बपाल के पुत्र हयपति देवपाल से यशोवर्मन् को मिली। इस प्रकार वैकुण्ठ मूर्ति काश्मीर से खजुराहो आयी। इस यात्रा के इतिहास का दीनबन्धु पाण्डेय ने वैकुण्ठ के स्वरूप दर्शन एवं पूजा की यात्रा का उल्लेख माना है।

मूर्तिशिल्प

मूर्तिशिल्प की दृष्टि से भी यह प्रतिमा विशिष्ट है। भारतीय शिल्प कला में गुप्तकाल के बाद मध्यकालीन शिल्प की चन्देल कला में खासकर खजुराहो का शिल्पी देव प्रतिमाओं के निर्माण में निर्धारित नियमों का पालन करने के लिए तो बाध्य दिखता है लेकिन सौन्दर्य भरने के लिए वह स्वतन्त्र है। वास्तव में सौन्दर्य सृजन के द्वारा आध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति कराने की प्रक्रिया का आरम्भ गुप्तकाल में ही हो चुका था। खजुराहो के शिल्पी ने भी मूर्ति की नवोन्मेषणपूर्ण व्यंजनामयी आकृतियों से आध्यात्मिक अनुभूति का सामंजस्य किया है वैकुण्ठ प्रतिमा के मध्य मुख के शान्त एवं निश्छल भाव तथा सन्तुलित आभूषण से यह विशेषता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त वैकुण्ठ प्रतिमा के पार्श्व के दशावतार अंकन तथा परिचारकों की मूर्तियाँ भी काफी संयत बनी हैं। प्रतिमा को चारों तरफ से कोरकर त्रिआयामक बनाये गये कोने के भाव को प्रदर्शित करने के लिए मुख्य प्रतिमा के अगल-बगल के पत्थर को काटकर निकाल दिया गया है। प्रतिमा के पीछे की तरफ अश्वमुख तथा शरीर का अंकन अगले भाग की भाँति ही सुन्दर ढंग से किया गया है लेकिन परिकर के पार्श्व भाग को सादा ही रखा है। यद्यपि यह प्रतिमा चतुर्दिक दर्शन के लिए ही बनी होगी लेकिन इसके मुख व शरीर को छोड़कर बाकी का हिस्सा सादा है। प्रस्तुत मूर्ति असुरों का वध करने वाली है लेकिन यह मूर्ति विष्णु के शान्त स्वरूप को प्रदर्शित करती है। यह अढ़न उस परम्परा का है जिसमें नृसिंह जैसे रौद्र भाव वाले देवता का शान्त मुद्रा में अंकन हुआ है। उसी प्रकार यह वैकुण्ठ संहार करने वाले होते हुए भी प्रशान्त मुद्रा में बने हैं।

विष्णु

प्रतिमा विवरण एवं विशिष्टता

खजुराहो पुरातत्त्व संग्रहालय की चन्देल काल की एक अति सुन्दर विशिष्ट प्रतिमा (पंजीयन संख्या 117, चित्र संख्या 02) संग्रहालय की वीथिका में प्रदर्शित है।

प्रतिमाशास्त्रीय विवेचन

इस प्रतिमा में विष्णु पद्मपीठ पर समभंग खड़े हैं। वे बहुत ही अलंकृत किरीटमुकुट धारण किये हुए हैं। उनके कानों में रत्नकुण्डल भुजाओं में केयूर कंकण, वक्ष पर यज्ञोपवीत, और पैरों में नूपुर जैसे अलंकार हैं। वैजयन्तीमाला का अंकन इनकी सुन्दरता को और बढ़ा देता है। चतुर्भुज प्रतिमा के चारों हाथों में प्रतिमा के दाहिने ओर से क्रमशः पहला हाथ खण्डित है, दूसरे में गदा, तीसरे में चक्र और चौथे में शंख धारण किये हैं। प्रतिमा के सिर के पीछे कमलपत्रांकित बहुत ही सुन्दर सिरश्चक्र है जिसके ऊपर ब्रह्मा शिव की आकृतियाँ बनी हैं।

इनके मध्य में विष्णु की छोटी प्रतिमा रही होगी जो अब नष्ट हो गयी है। सिरश्चक्र के दोनों तरफ पुष्पमालाधारी दो युगल विद्याधरों की आकृतियाँ भी अंकित हैं। नीचे देवता के दाहिने पार्श्व में



एक देवी आकृति अपने बायें हाथ में चामर लिए हुए है

जिसका दाहिना हाथ कट्यावलम्बित है। इसी प्रकार देवता

के बायें एक पार्श्वचर अपने दाहिने हाथ में चामर लिए हुए

और उसका भी बायाँ हाथ कट्यावलम्बित अंकित है। इन

दोनों के पीछे क्रमशः चक्र ओर शंख पुरुष खड़े हैं। दोनों

विशाल गरुडमुकुट धारण किये हुए हैं और अपने एक हाथ

में अपना प्रतीक धारण किये हुए हैं। पार्श्वचरों और चक्र एवं

शुख पुरुषों के ऊपरी भाग में विष्णु की पत्नियों 'श्री' और

'पुष्टि' का अंकन है। श्री अपने दाहिने हाथ में पद्म लिए हैं

तथा बायाँ हाथ कट्यावलम्बित है। 'पुष्टि' के दोनों हाथों में

वीणा है। मुख्य प्रतिमा की पद्म पीठिका के नीचे कई

छोटी-छोटी आकृतियों का एक समूह अंकित है। केन्द्र में

एक देवी आकृति कूर्म पर ध्यान मुद्रा में आसीन है जिसके

दोनों पार्श्वों में सर्पपुच्छ युक्त दो नाग अथवा नागिनियाँ

अंजलिमुद्रा में हाथ जोड़े प्रदर्शित हैं। नागों के दोनों ओर

दो-दो मकर वाहिनी जल देवियाँ अंकित हैं। चारों अपने

दोनों हाथों से एक-एक घट पकड़े हुए हैं। इनके पीछे

दोनों ओर एक-एक प्रतिमा नृत्य और वंशीवादन में तल्लीन

अंकित है। रामाश्रय अवस्थी ने इस अंकन को **भागवतपुराण**

में वर्णित कथा का अंकन माना है जिसमें केन्द्र में कूर्म पर

बैठी देवी लक्ष्मी हैं जो समुद्र मन्थन के समय कूर्म की

मथानी पर प्रकट हुई थीं। मध्यकालीन अन्य विष्णु-मूर्तियों की चरण चौकी पर भी इसी प्रकार लक्ष्मी

का अंकन प्राप्त होता है, जिसे विद्वानों ने पृथ्वी या भू-देवी माना है। उनके प्रकट होने पर श्रेष्ठ नदियाँ

मूर्तिमान् होकर उनके अभिषेक के लिए स्वर्ण कलशों में पवित्र जल लायी थीं, बादल सदेह होकर वेणु

आदि वाद्य यन्त्र जोर-जोर से बजाने लगे थे और नागों ने उन्हें दो कुण्डल समर्पित किये थे। अवस्थी

द्वारा प्रस्तुत यह व्याख्या भागवत पुराण के श्लोकों के आधार पर है। देवता के पद्मपीठ के दोनों तरफ

एक-एक भक्त अंजलिमुद्रा में हाथ जोड़कर बैठे अंकित हैं। इसके अलावा प्रभावली में मत्स्य, कूर्म,

वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम और कल्कि अवतारों के भी अंकन हुए हैं। इनमें वराह और नरसिंह शिरश्चक्र के दोनों ओर बनी रथिकाओं में प्रदर्शित है।

मूर्तिशिल्प

खजुराहो के शिल्पी ने सौन्दर्य और मूर्ति की नवनवोन्मेषपूर्ण व्यंजनामयी आकृतियों से आध्यात्मिक अनुभूति का सामरस्य मानकर लावण्य संयोजन के लिए सूक्ष्मता और मधुरता को अपनी कृति में सन्निविष्ट किया है। स्टेला क्रैमरिश के अनुसार भारतीय मूर्तिकला के मौलिक तत्त्व चन्देल मूर्तियों में जीवित और क्रियाशील रूप में देखे जा सकते हैं। यह मौलिक तत्त्व मध्ययुगीन स्वीकृत प्रवृत्तियों को पूरी तरह नियन्त्रित रखते हैं। भव्यता एवं भावों की गहनता और शिल्प की आन्तरिक भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से यद्यपि चन्देल मूर्तियों की तुलना गुप्त मूर्तियों से नहीं की जा सकती है किन्तु जिस ओजस्विता और आकर्षक भंगिमाओं एवं अलंकरणों से यह कला सम्पादित है वह निश्चय ही प्रशंसनीय है। इस प्रतिमा के चेहरे पर आध्यात्मिक क्रान्ति के साथ ही साथ सौन्दर्य और लावण्य का मोहक रूप परिलक्षित होता है। इसके सौन्दर्य में और भी वृद्धि इसके शिरश्चक्र तथा सन्तुलित आभूषणों से होती है। परिकर की आकृतियों का भाव सम्प्रेषण अद्भुत है। शिल्पी *भागवत्पुराण* के श्लोक को मूर्तरूप देने में पूर्णतः सफल रहा है। इस प्रकार का साहित्य में वर्णित स्वरूप का अक्षरशः उत्कीर्णन गुप्तकालीनकला में भी प्रचलित था जिसके कई उदाहरण प्राप्त हैं। यह प्रतिमा मध्यकालीन प्रतिमशास्त्रीय दृष्टि के साथ ही साथ मूर्तिशिल्प का भी उत्कृष्ट उदाहरण है।

विस्मय एवं वितर्क मुद्रा में विष्णु

प्रतिमा विवरण एवं विशिष्टता

खजुराहो से प्राप्त चन्देल कालीन बलुए पत्थर से निर्मित पद्मासन मुद्रा में बैठी विष्णु (पंजीयन संख्या 125, चित्र संख्या 03) की मूर्ति अपने एक हाथ की एक अलग मुद्रा के कारण विशिष्ट है।

प्रतिमाशास्त्रीय विवेचन

इस प्रतिमा के सन्दर्भ में स्टेला क्रैमरिश, जे.एन. बनर्जी, ऊषा अग्रवाल, रामाश्रय अवस्थी, देवांगना देसाई जैसे विद्वानों ने अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। पद्मासन विष्णु विनत पखुड़ियों वाले पद्म पर आसीन हैं। मस्तक पर किरीट-मुकुट, गले में सुन्दर ग्रैवेयक और छोटी-छोटी मोतियों की इकहरी माला (एकावली), कानों में कुण्डल, हाथों में केयूर और कंकण तथा वक्ष पर कौस्तुभ मणि, यज्ञोपवीत एवं मेखलाधारण किये हैं। वैजयन्तीमाला की सुन्दरता इसकी एक अतिरिक्त विशेषता दर्शाती है। मस्तक के पीछे कमल पत्रांकित शिरश्चक्र है जिसके दोनों ओर मालाधारी विद्याधर अंकित हैं। देवता के उपरले बायें



हाथ की तर्जनी चिबुक के बायें छोर को स्पर्श करती प्रदर्शित है तथा दूसरे निचले बायें हाथ में चक्र है। दाहिने दोनों हाथ खण्डित हैं। निचला दाहिना हाथ गदाधारी था क्योंकि अर्धखण्डित गदा अवशिष्ट है। दाहिने के ऊपरी हाथ के आयुध के बारे में विद्वानों ने कोई अनुमान नहीं व्यक्त किया है इस मूर्ति में चक्र और गदा आयुध दृष्टिगत हैं दाहिने उपरले हाथ में शंख और पद्म में से कोई एक रहा होगा। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि विष्णु के कमल पुष्प पर आसीन होने से पद्म का अंकन शायद दुबारा हाथ में न किया गया रहा हो। इस प्रकार दाहिने उपरले हाथ में शंख धारण किये होने की सम्भावना अधिक समीचित जान पड़ती है। देवता के दोनों दायें एवं बायें पाश्वों में एक-एक पद्महस्ता अनुचरी आकृतियाँ क्रमशः श्रीदेवी और भूदेवी प्रतीत होती हैं। पादपीठ पर तीन अन्य छोटी आकृतियाँ हैं। अंजलिमुद्रा में दोनों कोनों में भक्त बैठे हैं और बीच की आकृति विष्णु के वाहन गरुड की है।

सर्वप्रथम 1933 ई. में स्टेला क्रैमरिश ने चन्देल शैली की कुछ मूर्तियों को विषय बनाकर उनके मूर्तिशिल्प का अध्ययन प्रस्तुत किया जिसमें उपरिवर्णित मूर्ति भी सम्मिलित है। इस विलक्षण विष्णु के चित्र के विवरण में क्रैमरिश ने इसे मौनव्रतिन् कहा। इसके बाद के विद्वानों जैसे रामाश्रय अवस्थी, उषा अग्रवाल, कलपना देसाई आदि ने इसे मौनव्रतिन् ही माना है। जे.एन. बनर्जी ने 1941 ई. में इस विलक्षण प्रतिमा का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है जहाँ पर इस मूर्ति का कोई सम्बोधन नहीं दिया परन्तु मूर्ति के चित्र के लिए मौनव्रतिन् शीर्षक ही प्रयोग किया है। बनर्जी ने इस मूर्ति के अध्ययन के सन्दर्भ में कई अन्य मूर्तियों का उल्लेख किया है। पल्लवकालीन कैलाशनाथ मन्दिर की चण्डेशानुग्रह मूर्ति के अंकन में गोपीनाथ राव ने अपने १९१६ ई. के अध्ययन में चण्डेश के पिता के बायें



Fig. 2. Chandeshanugrahmurti: Stone
Ootjwaram.



हाथ की मुद्रा के प्रदर्शन को विस्मयहस्त माना है। सन्दर्भित मूर्ति को ध्यान पूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि चण्डेशानुग्रह में विस्मय मुद्रा को बताने का जो ढंग है वह चिबुक पर ऊँगली न होकर बायें हाथ की हथेली



804. 805. 806. 807.
From: Madamidi.

एवं उसकी ऊँगलियों को बायीं ओर घुमाते हुए आश्चर्य व्यक्त किया गया है। अतः विस्मय की यह मुद्रा चिबुक पर ऊँगली रखने से भिन्न है। फोगल द्वारा सन्दर्भित हार्पोक्रेटिज देवता मूर्ति की मुद्रा जिसमें वह दाहिने हाथ की एक ऊँगली चिबुक पर रखा है, की समनता उन्होंने मथुरा के वेदिका स्तम्भ पर अंकित यक्ष कही गयी मूर्ति की मुद्रा से किया है। यह यक्ष अपने दो ऊँगलियों (तर्जनी व मध्यमा) को चिबुक पर रखे अंकित है। मथुरा के इस उदाहरण को वासुदेव शरण अग्रवाल ने ऋष्यशृंग का अंकन मानते हुए इसे विस्मय और वितर्क मुद्रा माना है। अन्त में जे.एन. बनर्जी ने मद्रास के शेरमा देवी मन्दिर की राम, सीता व लक्ष्मण के साथ हनुमान के अंकन का संदर्भ लिया है। इस अंकन में हनुमान के दायें हाथ की ऊँगलियाँ बायीं तरफ होठ के नीचले भाग को स्पर्श कर रही है।

खजुराहो की विष्णु मूर्ति की बायें हाथ की तर्जनी ऊँगली होठों से अलग चिबुक को छूती हुई अंकित की गयी है। इसके इस अंकन को अध्येताओं ने सही रूप से नहीं देखा है— कहीं वर्णन में ऊँगली की होठों पर कहा तो कहीं इस मूर्ति के रेखाचित्र में ऊँगली को होठों पर अंकित बनाया।

जे.एन. बनर्जी द्वारा संदर्भित चारों मूर्तियों के ऊँगलियों का अंकन हमारे लिए विशेष आकर्षण का बिन्दु है जिसका उचित सन्दर्भ बनर्जी ने नहीं लिया है। फोगल ने श्रृष्यशृंग की मुद्रा की समानता हार्पोक्रेटिज की मुद्रा से की थी किन्तु वासुदेव शरण अग्रवाल ने हार्पोक्रेटिज की एक ऊँगली (तर्जनी) और श्रृष्यशृंग की दो ऊँगलियों (तर्जनी एवं मध्यमा) में भेद मानते हुए पहले को मौन का प्रतीक माना है। चूँकि इसमें तर्जनी होठ या होठों को नहीं छूती है इसलिए वह शान्त या स्तब्धता बोधक नहीं लगता और यहाँ भी विस्मय या वितर्क को ही प्रदर्शित किया गया है। अग्रवाल ने दूसरे को विस्मय एवं वितर्क का माना है। दायें हाथ की ऊँगली मुख तक ला कर चुप कराने का एक निर्देश कालिदास ने *कुमारसम्भव* में नन्दी द्वारा गणों को चुप कराने के वर्णन में दिया है। इसी प्रकार शेरमादेवी मन्दिर, मद्रास की हनुमान मूर्ति के दाहिने हाथ की ऊँगलियों को होठों तक होने के कारण बनर्जी ने शान्त भाव का प्रतीक माना है लेकिन इस प्रतिमा का सूक्ष्मता के साथ अध्ययन करने पर यह प्रतिमा दाहिने हाथ से सम्भवतः पुष्प जैसे किसी वस्तु को सूँघती हुई प्रतीत होती है। विस्मय एवं वितर्क का सन्दर्भ संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में मिलता है। भरतमुनि के *नाट्यशास्त्र* तथा *दशरूपक* में प्राप्त सन्दर्भ विशेष रूप से उल्लेख्य है। स्पष्ट ही दाहिने हाथ की एक ऊँगली अर्थात् तर्जनी ऊँगली का प्रयोग शान्त भाव के लिए हुआ है। शान्त करने की इस मुद्रा का प्रयोग जन प्रचलन में आज तक है जिसका उदाहरण अस्पतालों की दीवारों पर नर्स द्वारा 'कृपया शान्त रहिए' के पोस्टर में भी देखा जा सकता है। स्तब्धता के लिए एक ऊँगली का अंकन निर्देशात्मक होता है इसलिए इसमें दाहिने हाथ का ही प्रयोग होता है। बायें हाथ की तर्जनी का प्रयोग इन सन्दर्भों के आधार पर निश्चित रूप से मौन के लिए नहीं जान पड़ता। ऋष्यशृंग के अंकन के सन्दर्भ में दाहिने हाथ की दो ऊँगलियों (तर्जनी एवं मध्यमा) का आधार उसे मौन न मानकर विस्मय या वितर्क कहा गया है। यह मुद्रा होठों से हटकर चिबुक अथवा कपोल या चिबुक और कपोल के सन्धि स्थल के स्पर्श से भी इंगित हो सकती है। इस स्थिति में दो ऊँगलियों के स्थान पर केवल एक ऊँगली तर्जनी हो सकती है और यह मुद्रा दाहिने या बायें हाथ में से किसी हाथ के माध्यम से अंकित की जा सकती है। इस परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए उचित यही लगता है कि खजुराहो की सन्दर्भित विष्णु प्रतिमा जिसमें बायें हाथ की तर्जनी चिबुक और कपोल को स्पर्श करती है। विस्मय व वितर्क की मुद्रा में है। मौनव्रतिन के रूप में चर्चित इस प्रतिमा को विस्मय व वितर्क मुद्रा की विष्णु प्रतिमा कहा जाना चाहिए।

मूर्तिशिल्प

मध्यकालीन मूर्तिकला की चन्देल शैली का यह एक अनुपम उदाहरण है। इस प्रतिमा के गोल भरे मुख मण्डल पर आध्यात्मिक कान्ति के साथ ही साथ सौन्दर्य और लावण्य का मोहक रूप परिलक्षित होता है। इस मूर्ति में कलाकार ने आन्तरिक भावों तथा सौन्दर्य को स्पष्ट रूप से उभारने का सफल प्रयास किया है।

चौंसठभुजी नरसिंह

प्रतिमा विवरण एवं विशिष्टता

पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो में संग्रहीत चन्देलकालीन लगभग ११वीं सदी ई. की खजुराहो (मध्य प्रदेश) से प्राप्त चौंसठ भुजाओं वाले नरसिंह (पंजीयन संख्या 1252, चित्र संख्या 04) अपनी विरलता की दृष्टि से विशिष्ट हैं।

प्रतिमाशास्त्रीय विवेचन

खजुराहो की चौंसठ भुजाओं वाली इस मूर्ति में अतिभंग खड़े नरसिंह अपने बायें हाथ से हिरण्यकशिपु की बाँयी भुजा पकड़े प्रदर्शित हैं। शेष सब हाथ खण्डित हैं। हिरण्यकशिपु उनकी बायीं जंघा पर पड़ा है जिसकी प्रतिमा खण्डित है किन्तु उसका विदारित उदर अभी भी दृष्टिगत है। नरसिंह का मस्तक टूट गया है। मस्तक के ऊपर बनी रथिकाओं में ब्रह्मा और शिव अंकित हैं। मस्तक के ठीक ऊपर बनी रथिका में विष्णु की भी छोटी मूर्ति बनी रही होगी जो अब खण्डित है। देवता तथा दैत्य दोनों ही सामान्य आभूषणों से अकृत हैं। पाद पीठिका पर देवता के दाहिनी ओर चार असुरों का



चित्रण है। जिनमें से एक हताहत सा लुढ़का पड़ा है। बायीं ओर भी आक्रमण करते हुए कई असुर बने हैं जिसमें एक अपेक्षाकृत बड़ी आकृति है। पीठिका के इस अट्टन को रामाश्रय अवस्थी ने *भागवतपुराण* के उस सन्दर्भ पर आधारित बताया है जिसमें कहा गया है कि जिस समय नरसिंह ने हिरण्यकशिपु का हृदय विदारित कर उसे पटक दिया उस समय सहस्रों शस्त्रों से युक्त दैत्य एवं दानव भगवान् पर प्रहार करने के लिए आ गये, किन्तु भगवान् ने अपनी भुजा रूपी, पादों और नख रूपी शस्त्रों से चारों असुरों को खदेड़-खदेड़ कर मार डाला। चौंसठ भुजाओं से युक्त नरसिंह मूर्ति का विवरण हमें उपलब्ध किसी भी शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थ से प्राप्त नहीं होता है। इन भुजाओं के अंकन का आधार भी *भागवतपुराण* में वर्णित वह प्रसंग हो सकता है जिसमें यह कहा गया है कि नरसिंह के चारों ओर फैली हुई सैकड़ों भुजाएं भी जिनके नख आयुध का काम करते थे। अधिक संख्या वाली भुजाओं की नरसिंह की

प्रतिमा *भागवतपुराण* के उस वर्णन से मेल खाती है जिसमें कहा गया है कि नरसिंह की अनन्त भुजाएं ही उनकी सेना के रूप में थीं।

मूर्तिशिल्प

खजुराहो की नरसिंह मूर्तियों में विशालतम एवं विरल मूर्ति अभिव्यक्ति और रचना दोनों ही दृष्टियों से श्रेष्ठ है। यह मूर्ति अब खण्डित अवस्था में है। इस खण्डित मूर्ति से भी इसके उत्कृष्ट शिल्प का अन्दाज लगाया जा सकता है। यह मूर्ति चारों तरफ से कोरकर बनायी गयी जान पड़ती है। खजुराहो मूर्तिकला में चारों तरफ से कोरकर बनाई गयी मूर्तियाँ मुख्यतः गर्भ गृह में स्थापित हैं जैसे कि

लक्ष्मण, चतुर्भुज, वराह, वामन आदि मन्दिरों की मूर्तियाँ। अतः उपरिवर्णित प्रतिमा का उत्कृष्ट शिल्प तथा चतुर्दिक कोरकर बनाया जाना इस बात का प्रबल संतत देता है कि खजुराहो में वराह अवतार की भाँति ही नरसिंह अवतार का भी मन्दिर रहा होगा जिसके गर्भगृह में यह उत्कृष्ट प्रतिमा प्रतिष्ठित रही होगी। खजुराहो के शिल्पी ने इस प्रतिमा के बाह्य सौन्दर्य के साथ ही आन्तरिक भावों को उभारने में पूर्णतया सफलता पाई है।

प्रस्तुत शोध-आलेख में खजुराहो के विविध क्षेत्रों से प्राप्त विशिष्ट वैष्णव प्रतिमाओं का प्रतिमा-शास्त्रीय एवं मूर्ति-शिल्प की दृष्टि से विवेचन किया गया है। विवेच्य प्रतिमाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि खजुराहो उत्तर भारत में वैष्णव मूर्ति-शिल्प का सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र था। यहाँ वैष्णव धर्म केवल राजकीय संरक्षण तक सीमित नहीं रहा, बल्कि चन्देल शिल्पियों ने उसे अपनी मौलिक सृजनात्मकता से एक नया आयाम दिया।

गुप्तकाल से प्रारम्भ हुई विष्णु-मूर्तियों की विकास-यात्रा खजुराहो में अपनी पूर्णता को प्राप्त करती है। यहाँ की प्रतिमाओं में दो परम्पराएँ समानांतर चलती दिखती हैं। प्रथम, वे प्रतिमाएँ जो विष्णुधर्मोत्तरपुराण, रूपमंडन, अपराजितपृच्छा, देवतामूर्तिप्रकरण जैसे शास्त्रीय ग्रंथों के लक्षणों का अक्षरशः पालन करती हैं। द्वितीय, वे प्रतिमाएँ जो शास्त्रीय निर्देश से मुक्त होकर शिल्पी की स्वच्छंद कल्पना और पौराणिक आख्यानों की जीवन्त अभिव्यक्ति हैं। विस्मय एवं तर्क मुद्रा वाली विष्णु प्रतिमा (पंजीयन सं. 125) तथा चौंसठ भुजाओं वाली नरसिंह प्रतिमा जैसी विलक्षण कृतियाँ इसी द्वितीय वर्ग की हैं, जो खजुराहो की निजी विशेषता हैं।

वैकुण्ठ चतुर्भुज प्रतिमा (पं. सं. 79) में अश्वमुख कपिलमुख का अंकन, उसका कैलाश से खजुराहो तक आगमन का इतिहास यशोवर्मन के लक्ष्मण मंदिर अभिलेख में सुरक्षित है, जो वैकुण्ठ के स्वरूप दर्शन और पूजा की यात्रा का प्रमाण है। सामान्य विष्णु प्रतिमा (पं. सं. 117) में चरण-चौकी पर समुद्र-मंथन से प्रकट लक्ष्मी का दृश्य और प्रभामंडल में दशावतारों का सूक्ष्म अंकन भागवत-पुराण के श्लोकों का मूर्त रूप है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि खजुराहो के शिल्पियों ने निर्धारित नियमों का पालन करते हुए भी सौंदर्य-सृजन में स्वतंत्रता ली है। लावण्य-संयोजन, सूक्ष्मता, मधुरता और आध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति में चन्देल कला गुप्तकालीन गरिमा को जीवित रखते हुए भी अधिक अलंकृत और यांत्रिक होती गई, जिससे मध्ययुगीन प्रतिमा-विज्ञान अधिक जटिल हो गया। इन विलक्षण प्रतिमाओं का अध्ययन न केवल वैष्णव प्रतिमा-विज्ञान को समझने के लिए आवश्यक है, बल्कि यह भी सिद्ध करता है कि शिल्प-शास्त्र अंतिम प्रमाण नहीं, बल्कि शिल्पी की प्रतिभा ही कला का अंतिम मानदण्ड है।

संदर्भ सूची –

1. ऋग्वेद, 1.154
2. ऋग्वेद, 1, 155, 5; 5.99.2.
3. वही 1.155.3.
4. सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, नई दिल्ली, 1961, पृ. 85-86
5. वही।
6. वही, पृ. 86
7. शतपथब्राह्मण, 14.1.1; सूर्यकान्त, उपरिउल्लिखित, पृ. 94
8. *Development of Hindu Iconography*, University of Calcutta, 1956, pp. 386-87

9. वही, pp. 387
10. भगवद्गीता, 18.61
11. महाभाष्य, 6.3.5
12. वही, pp. 103-04, 388
13. वही, पृ. 388
14. श्रीमद्भगवद्गीता, 4.7-8; DHI, pp. 389-390
15. महाभारत, 12.339.37; 389.77-290
16. वायुपुराण, 98.71 और आगे
17. भागवतपुराण, प्रथम स्कंध 3.6-22; द्वितीय स्कंध 7.1 और आगे; एकादश स्कंध 4.3 और आगे
18. Vaisṇavism, Śaivism and Minor Religious System (VSMRS), pp. 41-42; DHI, pp. 92-93, 390-91 मथुराकला, वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. 14
19. VSMRS, pp. 41-42; DHI, pp. 92-93, 390-91 मथुराकला, पृ. 14
20. राय, ज्ञानेन्द्र नारायण, उत्तर भारतीय संग्रहालयों में विशिष्ट प्रतिमाएँ, नई दिल्ली, 2019, पृ. 96-99
21. पाण्डेय, दीनबन्धु, *The Shahid of Afganistan and Punjab*, पृ. 235; 'The Expression udak purve mahodadhau in the Mahabharata and the Hayagriva Vishnu in Madhyadesh', *Indian Art and Culture*, पृ. 184-192; 'वेदों के उद्धारक गुर्जर-प्रतिहार', *द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय गुर्जर सम्मेलन* अंक वर्ष 29, अं. 2-3, नवम्बर- दिसम्बर 2000, पृ. 21 पर सन्दर्भित शोधपत्र भी द्रष्टव्य
22. अनुशासन पर्व, 167.39
23. तृतीय स्कन्ध, 16.4-6
24. अष्टम स्कन्ध, 5.4
25. विष्णुपुराण, 3.1.41
26. मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी एवं कमल गिरि, मध्यकालीन प्रतिमालक्षण वाराणसी, 1997 पृ. 95-96
27. छाबड़ा, बहादुर चन्द, 'Coin Legends of the Gupta Emperors and Vishṇusahasranāma', *Journal of the Numismatic Society of India, Varanasi* भाग 09, खण्ड 02, पृ. 137
28. F. Kielhorn, *Epigraphia Indica*, Vol. I, p. 124
29. रामाश्रय अवस्थी, खजुराहो की देव प्रतिमाएँ, पृ. 129-37; पाठक, वी. एस., वैकुण्ठ का विकास, पृ. 932; *Journal of the Madhya Pradesh Itihas Parishad*, भाग 2, पृ. 09
30. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 85.43-45
31. जयाख्यसंहिता, 6.63-64
32. अपराजितपृच्छा, 219.25-26
33. रूपमण्डन, 3.52-54
34. देवतामूर्तिप्रकरण, 5.91-93
35. पाण्डेय, दीनबन्धु, *अश्वमुखी देवता* (प्रकाश्य)
36. पाण्डेय, दीनबन्धु, *The Shahid of Afganistan and Punjab*, पृ. 235; 'The Expression udak purve mahodadhau in the Mahabharata and the Hayagriva Vishnu in Madhyadesh', *Indian Art and Culture*, पृ. 184-192; 'वेदों के उद्धारक गुर्जर-प्रतिहार', *द्वितीय*

- अन्तर्राष्ट्रीय गुर्जर सम्मेलन अंक वर्ष 29, अं० 2-3, नवम्बर- दिसम्बर 2000, पृ. 21 पर सन्दर्भित शोधपत्र भी द्रष्टव्य
37. अवस्थी, रामाश्रय, उपरिउद्धृत, पृ. 67; राय, ज्ञानेन्द्र नारायण, उत्तर भारतीय संग्रहालयों में विशिष्ट प्रतिमाएँ, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ 99-101
 38. वही।
 39. [Catalogue of Brahmanical Image in Mathura Art](#) by V.S. Agrawala [p. 116](#); मथुरा कला, पृ. 66
 40. भागवतपुराण, 8.8.10
 41. वही, 8.8.13
 42. वही, 8.8.16
 43. क्रैमरिश, एस., *Indian Sculpture*, पृ. 109-110
 44. क्रैमरिश, एस., 'Chandella Sculpture Khajuraho', *Journal of the Indian Society of Oriental Art Calcutta* भाग 1, पृ. 99-100 चित्र 30
 45. राय, ज्ञानेन्द्र नारायण, उत्तर भारतीय संग्रहालयों में विशिष्ट प्रतिमाएँ, नई दिल्ली, 2019, पृ. 99-101
 46. बनर्जी, जे. एन., *Development of Hindu Iconography*, पृ. 406
 47. राव, गोपीनाथ, *Elements of Hindu Iconography*, पृ., 208, चित्र 2
 48. अग्रवाल, वी. एस., 'Relief of Rishya-Sringa', *Journal of the Indian Society of Oriental Art*, पृ. 62-64
 49. द्रष्टव्य, राव, गोपीनाथ, *Elements of Hindu Iconography* भाग 1, पृ. 189, फलक 54
 50. अग्रवाल, भारतीय कला, वाराणसी 1966 पृ. 60
लतागृहद्वारगतोऽयं नन्दी वामप्रकोष्ठार्पितहेमवेत्रः।
मुखार्पितैकाङ्गुलिसंज्ञयैव मा चापलायेति गणान्वयनैषीत्॥ कुमारसम्भवम्, 3.41
 51. राव, गोपीनाथ, उपरिउद्धृत, पृ. 189
 52. नाट्यशास्त्र, 6.75 अभिनव भारती, सम्पादक डॉ. नागेन्द्र, दिल्ली 1960,
 53. दशरूपक, चतुर्थ प्रकाश, व्याख्याकार भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2011, पुनर्मुद्रित
 54. राय, ज्ञानेन्द्र नारायण, उत्तर भारतीय संग्रहालयों में विशिष्ट प्रतिमाएँ, नई दिल्ली, 2019, पृ. 102-105
 55. अवस्थी, रामाश्रय, उपरिउद्धृत, पृ. 103
 56. भागवतपुराण, 6.8.31
 57. अवस्थी, रामाश्रय, उपरिउद्धृत
 58. भागवतपुराण, 6.8.22
 59. भागवतपुराण 7.8.31
 60. राय, ज्ञानेन्द्र नारायण, उत्तर भारतीय संग्रहालयों में विशिष्ट प्रतिमाएँ, नई दिल्ली, 2019, पृ. 110-111